लेख

ध्यान में लीन ललद्यद

कश्मीरी कवयित्री-ललद्यद

वीणा शिवपुरी

ग्वरन, वां' नुनम कुनय व़चुन, न्यबरू दो, पनम अंदर अ़चुन
सुय गव ललि म्ये वाख तु व़चुन, तवय ह्यो, तमय नंगय ऩचुन

(गुरू ने केवल कही एक बात, बाहर से कर भीतर प्रवेश
लल्ला के लिए यही था सदुपदेश, बिना पक्षधर के हुई नृत्य मगन
(भीतर) लगी घूमने बिना सहायक के।)

साभारः विमला रैना की पुस्तक-ललद्यद मेरी दृष्टि में

चौदहवीं शताब्दी का कश्मीर। 1301 में अंतिम हिन्दू शासक सहदेव की राजशाही समाप्त हो गई। 1339 में शाहमीर वंश की स्थापना हुई और अगले पांच सौ वर्षों तक मुस्लिम शासन रहा। इस्लाम धर्म फैल चुका था। हिन्दुओं में शैव और शाक्त भक्ति का वर्चस्व था परन्तु रामानुजाचार्य की कश्मीर यात्रा के फलस्वरूप वैष्णव धर्म भी जड़ें जमा रहा था। कश्मीर पर मुसलमान आक्रमणकारियों के हमले होते रहे थे परन्तु जबरन मुसलमान बनाए जाने का सिलसिला अभी कुछ दशक दूर था। हिन्दुओं और मुसलमानों की साझी संस्कृति पर वैदिक युग की छाप थी। तब मुसलमान संत भी ऋषि कहलाते थे जैसे नंदा रेशी जिनका असली नाम शेख नूरूद्दीन था। ऐसे सतरंगी माहौल में जन्मी पहली शैव योगिनी कवयित्री ललद्यद।

ललद्यद जन्म के साल पर मतभेद है। पर अनुमान है कि उनका उदय 1320 से 1355 के बीच हुआ था। चूंकि उनके बारे में लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं है इसलिए अधिकांश जानकारी उनकी रचनाओं के आधार पर या दंत कथाओं के माध्यम से मिलती है।

ललद्यद, लल्ला योगिनी, ललदिद्दी, लल्लेश्वरी, लल आरिफ़ा और भी न जाने कितने नामों से पुकारी जाने वाली ललद्यद का जन्म श्रीनगर के दक्षिण पूर्व में करीब साढ़े चार मील दूर, पद्रेनथान गांव (प्राचीन पुरन्धिस्थान) के एक कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे बचपन से मेधावी और धार्मिक प्रवृत्ति की थी। 12 वर्ष की उम्र उनका विवाह पाम्पुर के सोन भट के साथ कर दिया गया जहां कश्मीरी रिवाज के अनुसार उनका नाम पद्मावती रखा गया।

विवाह के साथ एक हृदयहीन पति और क्रूर सास के अत्याचारों का सिलसिला शुरू हो गया। एक प्रचलित कथा है कि ललद्यद की सास उनकी थाली में एक गोल पत्थर रखकर उसे पके हुए चावल से ढक देती थी ताकि सबको ऐसा लगे कि वह बहू को ढेर सा चावल खाने को देती है। ललद्यद उसी चावल को खाकर न सिर्फ़ अपनी थाली

बल्कि पत्थर को भी धो-पोंछ कर अगले दिन के इस्तेमाल के लिए रख देती थीं।

सभी यातनाएं सहते, पूरे घर का काम करते हुए भी ललद्यद ईश्वर भक्ति में लीन रहती थीं। 14 साल इसी तरह काटकर 26 वर्ष की आयु में ललद्यद ने घर छोड़ दिया। परिवार से निकलकर रमता जोगी बनने से पहले की एक कथा बहुत लोकप्रिय है। कहा जाता है कि एक दिन ललद्यद को पानी भरकर लाने में कुछ देर हो गई क्योंकि वे भैरव मंदिर में बैठकर ध्यान में लीन हो गयी थी। उसके पति ने लाठी मारकर उनका घड़ा तोड़ दिया ताकि उन्हें फिर से पानी लाना पड़े। परन्तु चमत्कार तब हुआ जब घड़ा टूटकर नीचे गिर गया लेकिन पानी घड़े के आकार में सिर पर टिका रहा जिससे ललद्यद ने घर के सारे बर्तन भर दिए और बचा हुआ पानी बाहर फेंक दिया जहां एक चश्मा फूट पड़ा। लोगों का कहना है कि वह चश्मा सैकड़ों वर्षों तक रहा परन्तु 1925-26 के आसपास वह सूख गया। वह स्थान आज भी लल त्रग कहलाता है।

घर से निकल कर ललद्यद गांव-गांव घूमने लगी। साधु संतों की संगति करती और अपने शिव की भक्ति। उनके आरंभिक पदों में एक उदासी, एक खोज दिखाई पड़ती है। हालांकि उनके पदों का क्रम मालूम नहीं है परन्तु उनके ज़रिए ललद्यद की आध्यात्मिक यात्रा के अनेक पड़ावों का अनुमान लगाया जा सकता है।

ललद्यद शिव भक्त थीं इसमें कोई संदेह नहीं परन्तु उनके शिव साकार भी थे, निराकार भी और परमब्रह्म भी। उन्होंने अपने गुरू सिद्ध श्रीकांत से योग की शिक्षा प्राप्त की थी। वे एक ऊंचे दर्जे की योगिनी थीं। उनके अनेक पद कुंडलिनी जागृत होने और चक्रों पर ध्यान केंद्रित कर आत्म साक्षात्कार करने का संकेत करते हैं।

छः जंगल किए पार और जगाया चन्द्रमा को
(छः चक्र सातवां ब्रह्म रन्ध्र)
सांस को काबू में करके प्रसन्न किया प्रकृति को
प्रेम की अग्नि ने जलाया मेरा हृदय
और इस तरह पाया मैंने शंकर को

ललद्यद की रचनाएं चार पंक्तियों के पदों के रूप में हैं जिन्हें कश्मीरी में वाख़ कहा जाता है। वाख़ शब्द का मूल संस्कृत के वाच या वाक्य में है। लल वाख़ की भाषा संस्कृत और फ़ारसी शब्दों के साथ आम कश्मीरी है। दरअस्ल में वे उनके हृदय के उद्‌गार हैं जो कविता के रूप में बह निकले। उनकी भाषा सरल और उनके बिम्ब रोज़मर्रा के जीवन से लिए गए हैं। यही कारण है कि मौखिक होने के बावजूद ये वाख़ सैकड़ों वर्षों तक लोगों की ज़ुबान पर और यादों में ज़िंदा रहे। संस्कृत ग्रंथों में ललद्यद का उल्लेख नहीं मिलता। सबसे पहले 1620-1720 के दरम्यान संत रूपा भवानी, जिन्हें कश्मीरी, मां शारिका का अवतार मानते हैं ने लल्ला को अपना गुरू बताया।

शुद्धम अत्यन्त विद्याधारम, लल नाम लल परम गुअराम

सन् 1746 में मुहम्मद आज़म देदामारी ने वाक़ियाते कश्मीर में आरिफ़ा कामिला लल्ला के नाम से उनका ज़िक्र किया।

18वीं सदी में राजांका भास्कर ने उनके साठ वाख़ों को पहली बार शारदा लिपि में दर्ज किया और संस्कृत में उनका अनुवाद किया।

19वीं और 20वीं सदी में ग्रियरसन सहित अनेक अंग्रेज़ और भारतीय साहित्यकारों ने न सिर्फ़ लल वाख़ का अध्ययन, शोध व अंग्रेज़ी में अनुवाद किया बल्कि उन्हें कश्मीरी साहित्य की महानतम कवयित्री माना। आज भी कश्मीरी बोलने वाले लोग बग़ैर लल वाख़ का प्रयोग किए बिना बात नहीं कर सकते क्योंकि उनकी बातें, उनके उपदेश कहावतों और मुहावरों के रूप में आम बोलचाल का हिस्सा बन गए हैं। कश्मीरियों के जीवन, उत्सवों, शादियों और पर्वो पर लल वाख़ का प्रभाव आज भी गीतों के रूप में दिखाई देता है। हाल के वर्षों में ललद्यद पर फ़िल्में और नाटक तैयार किए गए है। अभिनेत्री मीता वशिष्ठ की प्रसिद्ध एकल प्रस्तुति देश-विदेश में सराही गई है जिसमें वे ललद्यद के जीवन के मुख्य आयामों को दर्शाती हैं।

हालांकि ललद्यद कश्मीरी शैव अद्वैत दर्शन जिसे त्रिका कहा जाता है को मानती थीं परन्तु उनकी रचनाओं में मीरा सी दीवानगी है। वे अपने शंकर के लिए भटकती मालूम होती हैं और आत्म साक्षात्कार के पश्चात उससे एकाकार भी हो जाती हैं।

दूसरी ओर कबीर की तरह वे कर्मकांड, व्रत उपवास को नकारती भी हैं— *परमात्मा को चाहे शिव, विष्णु, बुद्ध या ब्रह्मा*

कहो, मुझे तो मतलब सिर्फ़ सांसारिक बंधन काटने से है, जो चाहे इनमें से कोई भी कर दे।

मूर्ति भी पत्थर है और मंदिर भी पत्थर
ऊपर और नीचे सब एक है
किसकी पूजा करेगा ओ मूर्ख पंडित
जब तक बुद्धि और आत्मा का मिलन नहीं होता।

ललद्यद और कर्नाटक की अक्का महादेवी के जीवन में अनेक समानताएं हैं। दोनों अपनी ससुराल के अत्याचारों से त्रस्त थीं। दोनों ने ईश्वर भक्ति का रास्ता अपनाकर घर छोड़ दिया और बेसुध होकर घूमने लगीं। दोनों अपने समय की महान संत कवयित्रियां कहलाईं।

ललद्यद हिन्दू मुसलमान में कोई भेद नहीं मानती थीं। दरअस्ल मुसलमान भी उन्हें उतना ही अपना मानते थे जितना कि हिन्दू। एक के लिए वे लल आरिफ़ा थीं तो दूसरे के लिए लल्लेश्वरी।

जहां कहीं जो कुछ है वह शिव है
इसलिए भेद न करो हिन्दू या मुसलमान में
अगर बुद्धि है तो पहचानो अपने आपको
वही है असली ईश्वरीय ज्ञान।

हालांकि ललद्यद की साधना सिद्ध परम्परा से जुड़ी थी परन्तु परमात्मा के प्रति अगाध भक्ति उसका महत्वपूर्ण अंग थी। रामानुजाचार्य अवश्य 11वीं शताब्दी में भक्ति आंदोलन का बीज बो चुके थे परन्तु चैतन्य, मीरा, कबीर, तुलसी और सूरदास 15वीं शताब्दी में संत कवियों के रूप में उभरे। इस प्रकार न सिर्फ़ कश्मीर में बल्कि समस्त भारत में ललद्यद को भक्ति आंदोलन की प्रर्वतक के रूप में देखा जा सकता है।

ललद्यद के जीवन और दर्शन को जानने के लिए हमारे पास उनकी रचनाओं, दंतकथाओं तथा कुछ उद्धरणों के अलावा अन्य कोई साधन नहीं है। उनकी रचनाएं चूंकि सैकड़ों वर्षों तक केवल मौखिक रूप में रहीं, उनकी प्रामाणिकता पर भी विवाद उठता है। कबीर वाणी की तरह लल वाख़ की संख्या भी निश्चित नहीं है। कितने वाख़ उनके अपने हैं और कितने समय के साथ उनके नाम पर जुड़ गए। विद्वानों ने छानबीन कर अब उनकी संख्या 200 से 258 के बीच तय की है।

इसी प्रकार एक ही वाख़ के थोड़े बहुत अंतर से कई रूप मिलते हैं। इन वाख़ों की व्याख्या पर भी विद्वानों/समीक्षकों में मतभेद है। उनके एक प्रमुख वाख़ जिसमें वे नग्न होकर नाचने की बात करती हैं पर भी एक राय नहीं है। उसी तरह उन्हें बुलबुल शाह की सूफ़ी परम्परा से जोड़ने पर भी अनेक कश्मीरी विद्वानों को आपत्ति है।

आज जब कश्मीर की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियां एक मोड़ ले चुकी हैं अहम बात यह नहीं है कि ललद्यद को लेकर बौद्धिक और वैचारिक युद्ध में कौन जीतता है। महत्व इस बात का है कि ऋषि कश्यप से लेकर कल्हण, ललद्यद और हब्बा ख़ातून तक के प्रेम और सौहार्द के साझे सूत्र पर बल दिया जाए। आज चुनौती है लल आरिफ़ा उर्फ़ लल्लेश्वरी को साझी बपौती के रूप में स्वीकारना और स्थापित करना। आज के घायल कश्मीर को मां लल्ला के प्यार भरे मरहम की ज़रूरत है।

ललद्यद की मृत्यु से जुड़ी दंतकथा भी कबीर से कुछ फ़र्क़ नहीं है। कहा जाता है कि अपने अंत समय में वे अनन्तनाग ज़िले के बीच बिहाड़ा गांव में आ गई थीं। वहीं प्रकाश के रूप में उनकी आत्मा ने शरीर छोड़ दिया और ज्योति आकाश में विलीन हो गई।

जब उनके शरीर के अंतिम संस्कार का प्रश्न उठा तो हिन्दू और मुसलमान दोनों उन्हें अपना मानकर, अपने ढंग से संस्कार करना चाहते थे। तब उनकी आत्मा ने वहां मौजूद लोगों से दो तसले लाने के लिए कहा। एक तसले में शरीर को बिठा दिया और दूसरा सिर पर उल्टा ढक दिया। धीरे-धीरे उनका शरीर सूक्ष्म होता गया और दोनों तसले आपस में मिल गए। जब उन्हें खोला गया तो शरीर के स्थान पर केवल पानी था, जिसे दोनों सम्प्रदायों ने आपस में बांट लिया।

संत शेख नूरूद्दीन उर्फ़ नंदा रेशी ने ललद्यद के लिए कहा है—

पाम्पुर की लल ने दिव्य अमृत पान किया है।
वो बेशक हमारी प्यारी अवतार है
हे ईश्वर मुझे भी तू वही वर दे।

वीणा शिवपुरी *एक लम्बे अर्से से महिला मुद्दों पर लेख, कहानियों और अनुवादों की रचना करती रही हैं। वे 'हम सबला' के सम्पादन मंडल की वरिष्ठ सदस्य हैं।*